IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महात्मा गांधी के दर्शन में नैतिक आदर्शवाद एवं राजनीतिक यथार्थता

शुभम ओझा

शोधार्थी, दर्शन विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

(Shubham Ojha, PhD Research Scholar, Department of Philosophy, University of Delhi)

शोध सार

महात्मा गांधी के अनुसार, राजनीति में नैतिकता न केवल सत्य की खोज करने के एक तरीके को संदर्भित करती है, बल्कि इसका उद्देश्य स्वयं को और अधिक पूर्णता में जानने से भी है। अहिंसक राजनीति के माध्यम से गांधी का उद्देश्य नैतिकतायुक्त नागरिकता को सुनिश्चित करने के लिये व्यक्ति की क्षमता का विकास करना था। गांधी का मानना था कि हिंसा एक कानूनी राजनीतिक शक्ति की विफलता का संकेत है। इसलिये, उनके राजनीतिक सिद्धांत के मूल में ऐसे राजनीतिक दृष्टिकोण का समर्थन है जिसमें आंतरिक नैतिक शक्ति शामिल है, न कि तर्कसंगत हिंसा का दृष्टिकोण। इसलिये, उन्होंने लोकतंत्र को एक राजनीतिक शासन के रूप में नहीं बल्कि एक मूल्य के रूप में माना। गांधी के अनुसार, राजनीति चेतना से निर्देशित एक आचरण है, न कि आजीविका का एक जरिया। उनके अनुसार, राजनीतिक सिद्धांत की मूल शर्त हिंसा का उन्मूलन था। इसलिये उनका मुख्य उद्देश्य आक्रोश, घृणा और हिंसा को समाप्त करके आधुनिक राजनीति को आंतरिक रूप से सभ्य और सशक्त बनाना था। इस शोध पत्र का उद्देश्य गांधी के नैतिक आदर्शवाद के दृष्टिकोण को राजनीतिक यथार्थवाद के माध्यम से साकार होने का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : नैतिकता, आदर्शवाद, सत्य, अहिंसा, लोकाचार, अंतरात्मा

भूमिका

गांधी की अहिंसा की राजनीति सामूहिक शक्ति को इस तरह से संगठित करने की एक विधि थी जिसका उद्देश्य अनुकरणीय नैतिक आचरण और नवाचारों की ओर बढ़ना था। इसलिये गांधी एक राजनीतिक प्राणी के रूप में उत्कृष्टता को साध्य मानते हैं। और कहते हैं कि उत्कृष्टता एक परिवर्तनकारी शक्ति है, जो अंतःकरण के माध्यम से नैतिकता और राजनीति के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। वह एक समर्पित और प्रतिबद्ध राजनीतिक लोकाचार के समर्थन में तर्क देते हुए नैतिकताविहीन राजनीति को सिरे से नकारते हैं। उनके अनुसार, "मैंने हमेशा अपनी राजनीति नैतिकता या धर्म से प्राप्त की है और यही मेरी ताकत भी है।" उनके लिये जो महत्त्वपूर्ण था वह था राजनीति से हिंसा को समाप्त करना, जो राजनीति में नैतिकता के हस्तक्षेप के बिना नहीं हो सकता था। वह कहते हैं कि कुछ लोग यह मानते हैं कि नैतिकता का राजनीति से कोई सरोकार नहीं है और हमें अपने नेताओं के चरित्र से कोई सरोकार नहीं है, उन्हें यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि अगर स्वराज हमें सभ्य बनाने और हमारी सभ्यता को सुदृढ़ और नैतिक करने के लिये नहीं होता, तो इसका कोई मूल्य नहीं होता। हमारी सभ्यता का सार ही यह है कि हम अपने सभी सार्वजनिक या निजी मामलों में नैतिकता को सर्वोपरि स्थान देते हैं।

गांधी राजनीति को केवल तर्क का नहीं बल्कि हृदय का कार्य मानते थे। जैसा कि फ्रांसीसी दार्शनिक ब्लेज़ पास्कल ने कहा है कि "हृदय के अपने तर्क होते हैं जिन्हें तर्क स्वयं नहीं जानता।" उसी तरह, गांधी का भी मानना था कि 'नैतिकता का स्थान हृदय है, न कि तर्क। नैतिकता हमारे हृदय की पवित्रता में निहित है।' चूँकि मनुष्य स्वभाव में प्रेम, मित्रता, समानुभूति और सहयोगी भावना जैसे गुण हैं, इसलिये इन सभी विशेषताओं के साथ गांधी समाज को भी आंतरिक रूप से सशक्त बनाने पर जोर देते हैं।

इंडियन ओपिनियन के एक लेख में गांधी कहते हैं कि "यह मनुष्य का नैतिक स्वभाव ही है जिसके द्वारा वह अच्छे और नेक विचारों की ओर बढ़ता है। विभिन्न विज्ञान हमें दुनिया को वैसा ही दिखाते हैं जैसी वह है। नैतिकता हमें बताती है कि क्या होना चाहिये। यह मनुष्य को यह जानने में सक्षम बनाती है कि उसे कैसे आचरण करने चाहिये। मनुष्य के मन में दो द्वार हैं, जिसमें एक के द्वारा वह स्वयं को वैसा ही देख सकता है जैसा वह है; दूसरे के द्वारा, वह देख सकता है कि उसे क्या होना चाहिये।" इसके परिणामस्वरूप, गांधी ने नैतिक आचरण की स्वायत्त प्रकृति पर जोर दिया। उनकी नैतिकता का उद्देश्य राजनीति का खंडन करना नहीं था। बल्कि इसके विपरीत, गांधी के नैतिक आदर्शवाद को राजनीतिक यथार्थवाद ने ही पूरा यानी साकारित किया, जिसने एक लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की आधारशिला रखी। इसी दृष्टिकोण के अनुरूप वह राजनीति को सामाजिक और नैतिक प्रगति के संदर्भ में देखे जाने पर जोर देते हैं। गांधी अहिंसा को एक मौलिक सत्य के रूप

में मानते हुए 'साझी मानवता' की ओर बढ़ने का आह्वान करते हैं। यह साझी मानवता तभी संभव है जब इसमें वैश्विक चुनौतियों से निपटने और अपनी नैतिक खामियों को दूर करने की क्षमता हो।

आध्यात्मिकता बनाम धार्मिकता : गांधी का दृष्टिकोण

18वीं शताब्दी के अंत तक, दर्शनशास्त्र एक अकादमिक विषय बन गया था, जो केवल दर्शनशास्त्र विभागों में कार्य करने वाले शिक्षाविदों को दार्शनिकों के रूप में माना जाता था। उपनिवेशीकरण के साथ, यूरोपीय दार्शनिक विचारों ने शेष विश्व में सार्वजनिक संवाद को प्रभावित करना शुरू कर दिया। इन मानकों के विरुद्ध देखे जाने पर, गांधी एक दार्शनिक के रूप में योग्य नहीं थे। इसलिए, यह आश्चर्य की बात नहीं थी कि बड़े पैमाने पर लोगों के लिए, यह केवल गांधी के राजनीतिक आयाम थे जो दिखाई दे रहे थे। नैतिक आयाम और उससे जुड़ी जीवन शैली को "धर्म" की श्रेणी में समाहित कर लिया गया। लेकिन गांधी वैष्णव शब्दावली का निरंतर प्रयोग करते हुए भी धार्मिक नहीं थे। फिर भी, वह आध्यात्मिक थे, यदि आध्यात्मिकता का अर्थ आत्म-केंद्रितता को कम करने से लिया जाए। यह उनके गीता के अनुवाद के परिचय से स्पष्ट है। साल 1929 में "ईश्वर सत्य है" से "सत्य ही ईश्वर है" की उनकी यात्रा का उद्देश्य भी नैतिकता को उनके दर्शन का "पहला सिद्धांत" बनाना था। इसका एक अग्रदूत विलियम साल्टर के "नैतिक धर्म" के उनके 1907 के मुक्त अनुवाद में देखा जा सकता है जब उन्होंने कहा, "नैतिकता को एक धर्म के रूप में देखा जाना चाहिए"।

महात्मा बुद्ध और गांधी : नैतिकता का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

गांधी, महात्मा बुद्ध की तरह, एक नैतिक परिणामवादी थे क्योंकि उनके नैतिक तरीके का उद्देश्य आत्म-केंद्रितता को कम करना और सभी के कल्याण यानी सर्वोदय को बढ़ावा देना था। अपने जीवन के अंत तक, उन्होंने लगातार अपने आत्मकेंद्रित व्यवहारों और विचारों से छुटकारा पाने की कोशिश की। कई मौकों पर उन्होंने कहा था कि वह स्वयं को "शून्य तक सीमित" करने की आकांक्षा रखते हैं, यानी एक ऐसी अवस्था जिसमें स्वार्थ/आत्मकेंद्रितता की उपस्थिति न हो। बुद्ध के लिए भी, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, आदि जैसे गुणों के माध्यम से आत्म-केन्द्रितता को कम करना, सर्वोदय को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण था। बुद्ध के अनुभवजन्य सिद्धांतों के अनुसार, एक बार सभी के कल्याण (सर्वोदय) हो जाने के बाद, मनोवैज्ञानिक आत्मनिर्भरता आ जाएगी और इसके बदले में, असंतोष (दु:ख) और इसके सहवर्ती भय गायब हो जाएंगे। गांधी ने उस स्थिति को "निर्वाण" के बजाय "मोक्ष" की संज्ञा दी।

गांधी को बुद्ध से अलग क्या बनाता है, वह यह है कि गांधी, व्यक्तिगत मोक्ष के अलावा, स्वतंत्रता का विकास चाहते थे। गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम की अगर सही ढंग से व्याख्या की जाए, तो उसमें मानवता का समग्रतावादी दृष्टिकोण है, जिसमें बुनियादी समस्याओं, जैसे- भूख, प्यास, निरक्षरता, असाध्य रोगों आदि से स्वतंत्रता का लक्ष्य है। गांधीवादी नैतिकता के अनुसार, केवल राजनीतिक कार्रवाई के माध्यम से हम इस रचनात्मक कार्यक्रम को लागू कर सकते हैं। इसलिए, गांधी का दार्शनिक जीवन एक समाजवादी समाज के लिए एक स्पष्ट इच्छा है - क्योंकि स्वार्थ की कमी पर आधारित एक नैतिकता केवल तार्किक कारणों से एक समाजवादी जीवन शैली को मंजूरी दे सकती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरह कोई भी चीज जो स्वार्थ को बढ़ाती है, गांधी के जीवन के दार्शनिक तरीके के लिए अभिशाप है। गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम ने एक पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था के भीतर समाजवादी परिक्षेत्रों को उत्पन्न करने की मांग की, जिसे उन्होंने स्वराज की संज्ञा दी।

गांधीवादी नैतिकता और सत्य

सामान्यतः विश्व की सभी धार्मिक परंपराएँ 'सत्य' को निरपेक्ष, अविनाशी और परिभाषा से परे मानती हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'एकं सद् विप्रः बहुधा वदंति', आशय यह है कि सत्य एक है, किंतु ज्ञानी व्यक्ति अलग-अलग तरीके से इसकी व्याख्या करते हैं। मुंडक उपनिषद् में यह उल्लेख है कि 'सत्यं एव जयते नानृतम' अर्थात् सत्य की ही जीत होती है, असत्य की नहीं।

मंडल ब्राह्मण उपनिषद् में 'सत्य' को आत्मसंयम के अभ्यासों की श्रेणी में शामिल किया गया है। बुद्ध निर्वाण प्राप्त करने के साधन के रूप में ने चार आर्य सत्यों का उल्लेख किया। महावीर ने सत्य को पंच महाव्रत का अनिवार्य अंग बनाया। सत्य ईश्वर के तीन गुणों में से एक है, अन्य दो हैं- चेतना और आनंद। अपनी उच्चतम अवस्था में, धर्म उस सत्य का पर्याय है जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था के माध्यम से स्वयं को प्रकट करता है। अनुभवजन्य सत्य बदल सकता है, लेकिन ब्रह्म (सर्वोच्च) रूप में होने से पूर्ण सत्य कभी नहीं बदलता है।सत्य स्वतः स्पष्ट है, कोई राज्य या धार्मिक सत्ता इसका खंडन नहीं कर सकती। सत्य से ही देवत्व का मार्ग प्रशस्त होता है। एक आध्यात्मिक अवधारणा के रूप में, सत्य अस्पष्ट प्रतीत हो सकता है। हालाँकि, एक सामाजिक मूल्य के रूप में, सत्य का मानव जीवन पर व्यावहारिक प्रयोग होता है।

'सत्य' की संकल्पना से गांधीवादी नैतिकता का सीधा संबंध है। महात्मा गांधी ईश्वर की पूजा 'सत्य' के रूप में करते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में सत्य को सभी कार्यों में सबसे उदात्त माना। प्रारंभ में, उनका मत था कि 'ईश्वर सत्य है', लेकिन बाद में अपने अनेक अनुभवों से उन्होंने यह साबित किया कि 'सत्य ही ईश्वर है'। गांधी के अनुसार,

'सत्य वही है जिसका आविर्भाव व्यक्ति की अंतरात्मा से हो'। उनके द्वारा सत्य को अनुभव करने का आशय विश्व की सभी वतुओं में एकता के बोध का होना था। सत्य और अहिंसा ने 'स्वराज' की उनकी अवधारणा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके अनुसार, स्वराज को एक राजनीतिक लक्ष्य के रूप में नहीं बल्कि 'स्वयं पर शासन' के रूप में देखा जाना चाहिये। उन्होंने सत्य के प्रति लगाव को पूर्ण स्वतंत्रता के रूप में माना, जिसमें अंतरात्मा की शक्ति का संकल्प निहित था। सत्याग्रह के उनके सिद्धांत का उद्देश्य भारतीयों की तरह ही ब्रिटिश मानसिकता को भी परिवर्तित करना था। गांधी के अनुसार, 'सत्य के साधक को धूल के कणों से भी अधिक विनम्र होना चाहिये।' गांधी सत्य के पक्ष में थे और उनका सुझाव था कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के लिये सत्य का एहसास करे। उनका मानना था कि सत्य का मार्ग कठिनाइयों से भरा है, लेकिन व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास के लिये हमें दुर्गम परिस्थितियों को समाप्त करना ही होगा। जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'सत्य एक विशाल वृक्ष की तरह है, आप जितना अधिक उसका पोषण करेंगे, वह उतना ही अधिक फल देगा'।

निष्कर्ष

समकालीन संदर्भों में महात्मा गांधी के नैतिक नेतृत्त्व को समझना और वास्तविक धरातल पर उनका अभ्यास किया जाना अति प्रासंगिक है। साथ ही, इसके माध्यम से आधुनिक राजनीति की अवधारणा का पुनर्मूल्यांकन करना अत्यावश्यक है। गांधी द्वारा प्रचारित राजनीतिक रूप से आवेशित, अहिंसक और नैतिक शैली का उद्देश्य एक आध्यात्मिक व्यक्ति का निर्माण करना है, जिसे अन्य सभी प्राणियों के कल्याण के लिए कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इस प्रकार यह आशावादी दृष्टिकोण रखा जा सकता है कि गांधी द्वारा प्रतिपादित जीवन का दार्शनिक तरीका धर्म के बाद की दुनिया में धर्म का विकल्प बन जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ

महात्मा गांधी, माई फिलॉसफी ऑफ लाइफ.

महात्मा गांधी, यंग इंडिया.

महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज.